Chap-3

तृतीय अध्याय

गोविन्द गिल्लाभाई की सम्पादन कला

तृतीय अध्याय

गोविन्द गिल्लाभाई की सम्पादन – कला

गुजरात की हिन्दी सृजन परम्परा

गुजरात के हिन्दी साहित्य के इतिहास के विषय में आधिकारिक रूप से बहुत कम ही लिखा गया है । आधुनिक विद्वानों में श्री के. का. शास्त्री,[1] पोपट भाई शंकर भाई,[2] डॉ. हरीश द्विवेदी[3] डॉ. नंद टी. हिंगोराजी[4] , डॉ. भोपाल सिंह राठौर[5], डॉ. आर. एस. प्रजापति[6] प्रो. कमल मेहता[7] डॉ. अम्बाशंकर नागर[8], डॉ. जगदीश गुप्त[9], डॉ. रामकुमार गुप्त[10] डॉ. भ्रमर लाल जोशी[11], डॉ. निर्मला असनानी[12], डॉ. देवी सहाय गुप्त[13], डॉ. अरुण शुक्ला[14], डॉ. रामणलाल पाठक[15], डॉ. मुहब्बत सिंह चौहान[16], डॉ. के. एम. शाह[17], डॉ. सुशीला आहूजा[18], डॉ. जे. के. व्यास[19], डॉ. नरेश चन्द्र पण्डया[20], डॉ. चन्द्रकांत महेता[21] डॉ. हरीश शुक्ल[22], डॉ. गोवर्धन शर्मा[23], डॉ. राजन नटराजन[24], डॉ. नटवरलाल उपाध्याय[25], डॉ. मदनगोपाल जानी[26] डॉ. कंचनलाल ब्रह्मभट्ट[27], डॉ. कुंजबिहारी वार्ष्णेय[28] आदि विशिष्ट विद्वानों के शोधपरक अनुशीलन के अतिरिक्त, डॉ. श्रीराम नागर, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, डॉ. किशोर काबरा, डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी, डॉ. दयाशंकर शुक्ल, डॉ. नवनीत गोस्वामी, डॉ. महावीर सिंह चौहान, डॉ. एस. पी. सिंह, डॉ. सोमाभाई शर्मा, डॉ. भूपतिराम सांकरिया, डॉ. शशिबाला अरोरा, डॉ. मदनगोपाल गुप्त, डॉ. मलारविन्दम्, डॉ. रानू मुखर्जी, डॉ. शैलजा भारद्वाज, सुदर्शन मजीठिया, सुंदरलाल कथूरिया, द्वारकाप्रसाद साचीहर, बदामसिंह रावत; प्रभृति अनुसंधान कर्ताओं और विश्लेषकों ने भी अपने अपने ढंगों से गुजरात के हिन्दी

साहित्य को विभिन्न आयामों में व्याख्यायित एवं समालोचित किया है ।

वैसे बारहवीं शताब्दी से पहले हिन्दी साहित्य के लिखित प्रमाणों का यहाँ सर्वथा अभाव रहा है । यहाँ का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य तेरहवीं शताब्दी से ही उपलब्ध हो पाता है । **डॉ. भगवत् शरण अग्रवाल** इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं - 'गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि में उसके बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दियों में विकसित हो रहे काव्य पल्लवों को देखा जा सकता है ।'[29]

डॉ. अम्बाशंकर नागर के गुजरात के प्रथम हिन्दी कवि के रूप में भालण का उल्लेख किया है[30] भालण के **'दसमस्कन्ध'** गुजराती भाषा के काव्य में पाँच पद विशुद्ध ब्रजभाषा के मिलते हैं, नरसी मेहता का समय भालण के आसपास का या उससे थोड़ा पहले का माना जाता है । डॉ. दशरथ ओझा ने नरसी मेहता के 159 पदों को सम्पादित किया है ।[31]

गुजरात में मुख्य रूप से कृष्ण भक्ति धारा का प्रभाव व्यापक रूप में रहा है । प्रसिद्ध संगीतकार बैजूबावरा चांपानेर (गुजरात) के ही निवासी थे[34] इसी प्रकार गुजरात के रसखान के नाम से प्रसिद्ध यहाँ के मुसलमान कवि राजे भी ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि रहे हैं । सूरत के भगवत दास कायस्थ, चाँडौद के भक्त कवि दयाराम, ईसरदास रोहड़िया, सायाफूला, आदित्यराम, राजकवि जेठाभाई, जामनगर के जायसुता प्रताप बाला, कृष्णदास अधिकारी, गबरीबाई, गिरिधर कवि आदि अनेक कवियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने कृष्णभक्ति धारा को गुजरात मे प्रवाहित किया था, इनके अतिरिक्त स्वामीनारायण सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवि ब्रजभाषा काव्य के समर्थ रचनाकार थे, इनके नाम इस प्रकार हैं - ब्रह्मानन्द,, मुक्तानन्द, प्रेमानन्द, प्रेमसखी, निष्कुलानन्द,देवानन्द, आविनाशानन्द, मंजुकेशानन्द तथा भूभानन्द ।

इसी प्रकार यहाँ के जैन ब्रजभाषा कवियों में सारंगधर, वसाहत, श्रीधर, शालिभद्रसूरि, विनयचन्द सूरि आदि प्रसिद्ध हैं । डॉ. हरीश शुक्ल ने लगभग 85 कवियों के विवरण स्पष्ट किए हैं[33] गुजरात में अनेक जैनधर्माश्रयी ग्रंथालयों एवं देवासरों में सहस्रों जैन-साहित्य की पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं, जिन्हें उलटने पलटने वाले शोधार्थी भी अब नहीं मिलते ।

जैन साधु पैदल भ्रमण करते थे और निरंतर अध्ययन । राजस्थान एवं गुजरात, जैन धर्म-संस्कृति एवं साहित्य सृजन के, उसके प्रचार एवं प्रसार के प्रमुख केन्द्र रहे हैं । इस सम्प्रदाय में साहित्य-सृजन का कार्य आठवीं शताब्दी से शुरू हो गया था, ऐसे प्रमाण मिलते

हैं । 13वीं, 14वीं शताब्दी तक अपभ्रंश भाषा में, इसका विपुल साहित्य मिलता है । हजारों की संख्या में रास-ग्रन्थों का सृजन हुआ मिलता है । पन्द्रहवीं सदी से 19वीं के मध्य जिस जैन साहित्य का सृजन हुआ है, उसमें हिन्दी भाषा में लिखे हुए ग्रन्थों की मात्रा कम नहीं है । विविध भण्डारों में प्राप्त ग्रन्थों की जो सूचियाँ बनी हैं, इनमें अनेक ग्रन्थ, हिन्दी में लिखे हुए हैं, ऐसा निर्देश - उन सूचियों में प्राप्त होता है, किन्तु फिर भी अनेक ऐसे भण्डार भी हैं, जिनके ग्रन्थों की कोई सूची अभी तक नहीं बनी है ।

गुजरात में जैन धर्म के कवियों की अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जिनकी कुछ विद्वानों ने राजस्थानी में गणना की है, तो अन्य विद्वानों ने हिन्दी में । इनमें हम 'शारंगधर, वसाहत, श्रीधर, शालिभ्रद सूरि, विजयसेन सूरि, विनयचन्द्र सूरि आदि को ले सकते हैं ।'[34] इनकी भाषा प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश भी कही गई है । हिन्दी साहित्य के इतिहासों में भी इनमें से कुछ का उल्लेख हुआ है । यहाँ सभी जैन कवियों के नामों एवं कृतियों का परिचय देना संभव नहीं है ।

गुजरात में ज्ञानाश्रयी संतों ने भी अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए साहित्यसृजन किया था । मध्यकालीन गुजरात (सन् 1400 से 1850 ई.) में, ज्ञानाश्रयी शाखा से संबंधित कम से कम इक्यावन कवि ऐसे मिले हैं, जिन्होंने हिन्दी, गुजराती प्रभावित हिन्दी अथवा सधुकड़ी हिन्दी में काव्य रचना की है । काव्य-कला की दृष्टि से इन सभी की रचनाओं का व्यवस्थित मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ है । इन साधु-संतों के जीवन और वाणी का संक्षिप्त परिचय कराने का कष्टसाध्य कार्य, इस क्षेत्र के कुछ विद्वानों ने अवश्य किया है । डॉ. नागर एवं डॉ. पाठक ने अपने 'गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी' ग्रन्थ में, 51 संतों का परिचय दिया है । कच्छी संतों की हिन्दी वाणी पर अलग से भी ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है । गुजरात के संत साहित्य पर कई विद्वत्तापूर्ण शोध-प्रबंध भी लिखे गए हैं । वैसे तो संतों को सगुण-निर्गुण की भेद-रेखा से परे माना गया है, फिर भी विभिन्न सन्त-सम्प्रदाय एवं उनकी शिष्य परम्पराएँ, उनकी अपनी सैद्धांतिक एकनिष्ठता की ही द्योतक कही जा सकती है । यही नहीं, इनमें से अनेक संत ऐसे भी हैं, जिन्होंने स्वयं अथवा उनके बाद उनके किसी शिष्य ने उनके नाम से, एक स्वतंत्र परम्परा को प्रचलित किया । मध्यकालीन गुजरात में ज्ञानाश्रयी संतकाव्य एवं उसकी साधना के निम्नलिखित स्रोत माने जा सकते हैं:

1. रामानंद की गुजरात - यात्रा;
2. कबीर एवं अन्य संतों की गुजरात - यात्राएँ;

HANSA MEHTA LIBRARY
The M.S. University of Baroda

3. गुजरात की तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति

गुजरात के ज्ञानाश्रयी शाखा के मध्यकालीन संतों में दादूदयाल, अखा, मुकुंद गुगली, आनंदघन, नरहरि, गोपालदास, लालदास, प्राणनाथ, देवचन्द्र मेहता, मुकुन्द दास, जीवन मस्तान, नवरंग स्वामी, अनुभवानंद, बूटिया, भाण साहब, कृष्णदास (कबीरपंथी), मेकन दादा, दीन दरवेश, निर्वाण साहब, रवि साहब, खीम साहब, जीवनदास ब्रह्मज्ञानी, मूलदास, हरिदास, धीरा, त्रीकमसाहब, मोरार साहब,लालदास साहब, केवलपुरी, त्रिविक्रमानंद, खाकी निर्मलदास, ईश्वरराम, बस्ता विश्वंभर, गरीबदास, देवीदान देथा, कुबेरदास, निरांत, होथी, दासी जीवण, छोटम, जीतामुनिनारायण, संतराम आदि आते हैं ।

उपर्युक्त संतों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है । एक तो वे, जिन्होंने स्वतंत्र रूप में साधना की थी, किसी गद्दी या सम्प्रदाय से संबंधित नहीं रहे । दूसरे वे जिनके नाम से गद्दियों की स्थापनाएं हुई और एक-शिष्य - परम्परा चल निकली अर्थात् एक नया सम्प्रदाय जैसे शुरू हो गया । तीसरे वे जो कि किसी प्रचलित गद्दी, मंदिर, मठ अथवा परम्परा से जुड़े रहे । चौथे वे जो मूलतः जैन थे परन्तु उन्होंने परम्परागत ज्ञानाश्रयी वैराग्य-संबंधी काव्य-रचना भी की ।

गुजरात के ज्ञानाश्रयी संत कवियों के विचारों का प्रभाव इनके परवर्ती कवियों पर भी रहा है । इसी तरह संत प्राणनाथ एवं प्रणयी सम्प्रदाय का भी प्रभाव यहाँ रहा है । प्रणामी सम्प्रदाय का भी प्रभाव यहां रहा है । प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी आपस में एक-दूसरे से मिलने पर, एक-दूसरे में परब्रह्म का दर्शन करते हैं और इसीलिए शिष्टाचार में रामराम, नमस्ते या ऐसा ही और कुछ न बोलकर 'प्रणामजी' कहते हैं । इसके मूल प्रवर्तक संत प्राणनाथ के गुरु संतकवि देवचन्द्र मेहता (1582-1659 ई.) थे, जिनसे संत प्राणनाथ ने लगभग 12 वर्ष की आयु में दीक्षा ली थी । इसे खिजड़ा, निजानंदी और धामी सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इसमें श्रीकृष्ण के प्रति गोपी या सखी भाव से भक्ति की जाती है और भक्तों को कृष्ण की विशिष्ट गोपियों के नाम से पहचाना जाता है, जैसे प्राणनाथ स्वयं इन्द्रावती सखी माने जाते हैं ।

प्राणनाथ का मूल नाम मेहराज था और इनका जन्म जामनगर के लुहाणा जाति के केशवजी ठक्कर के घर हुआ था । इनके दो पत्नियाँ थीं । संत प्राणनाथ ने अनेक धर्मों के सारतत्व का समन्वय करके (विशेषकर हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी धर्म) एक नए सम्प्रदाय को जन्म दिया था । इसलिए इनके अनुयायियों में हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही पाए जाते

हैं । स्वामी प्राणनाथ, भागवत कथा एवं कीर्तनों के द्वारा अपने विचारों का प्रचार करते थे। यह सब होने के बावजूद भी ये कृष्णभक्त कवियों की श्रेणी में नहीं माने जाते । इसका कारण यह है कि इस सम्प्रदाय में मूर्तिपूजा का निषेध है और सभी भक्त अपने को एक ही धाम के निवासी एवं ब्रह्मरश्मियों के रूप में मानते हैं । इनमें कोई छोटा-बड़ा, देसी-परदेसी, जाति, धर्म का नहीं माना जाता । ये तुलसी की माला धारण करते हैं और नैतिक आचरण को भक्ति की आधारशिला मानते हैं । अपने धर्म-ग्रन्थ 'कुलजम स्वरूप' की (स्वामी प्राणनाथ की वाणी का संग्रह) पूजा करते हैं । डॉ. पाठक ने संत प्राणनाथ के विषय में लिखा है कि 'ये रात-दिन कृष्ण-दर्शन के लिए तड़पते रहते थे । इनका स्वानुभव-कथन है कि अखंड लीलारास में संलग्न श्रीकृष्ण अकेले ही पुरुष हैं । दूसरा कोई पुरुष इस सृष्टि में नहीं है और उनकी प्राप्ति पुरुष दृष्टि से नहीं, स्त्री, सखी-भाव से ही संभव है ।' इस परम्परा के भक्तों में आगे चलकर दो वर्ग बन गए - एक कृष्ण की शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिवाला और दूसरा हिन्दू-मुस्लिम तथा अन्य सम्प्रदायों को लेकर चलनेवाला उदार मतवादी । प्रणामी सम्प्रदाय के काव्य पर विस्तृत शोधकार्य हुआ है । प्राणनाथ ने तत्कालीन हिन्दुस्तानी में केवल पद्य ही नहीं, गद्य की भी रचनाएँ कीं, जिनके कारण इनकी भाषा को अमीर खुसरो और भारतीय हरिश्चन्द्र की हिन्दी के बीच की कड़ी माना जा सकता है । उन्होंने बड़े गर्व से कहा था, 'सबको सुगम जानके कहूँगी हिन्दुस्तानी' । गुजरात के सूफी कवियों ने जन-भाषा के माध्यम से फारसी लिपि में अपनी बात कहने के लिए अपनी भाषा को 'गूजरी' कहते हुए, यही तर्क प्रस्तुत किया था । जैसे तुलसी ने भी लोक-कल्याण के लिए, लोक-भाषा में, रामचरितमानस की रचना कीं थी। इन सभी संतों का भाषागत अभिप्राय एक-सा है ।

संत प्राणनाथ की वाणियों को दो भागों में विभक्त किया जाता है । 1. होशवाणी, 2. बेहोशवाणी । होशवाणी में साम्प्रदायिक उन्मेष की रचनाएं हैं और बेहोशवाणी में गुरु की प्रेरणा और विरह से उन्मत्त काव्य ।

संत कवियों की परम्परा में ही रविभाण सम्प्रदाय व अनुयायियों ने भी अपने सम्प्रदाय के प्रचारार्थ साहित्य सृजन किया था । गुजरात में 'भाण' नामक अनेक संत हुए हैं, यहाँ हमारा तात्पर्य वाराही के भाण साहब से है । इनके नाम के आगे ही, इनके एक शिष्य का नाम जुडकर रविभाण सम्प्रदाय अस्तित्व में आया । बाद में इनके पुत्र और शिष्य ही, विविध-स्थानों की 'गद्दियों' पर विराजमान हुए और आज भी सौराष्ट्र एवं कच्छ में यह परम्परा जीवंत है । भाण साहब के संबंध में सम्प्रदायगत किंवदन्तियाँ अधिक मिलती हैं,

प्रामाणिक सामग्री कम । इनके द्वारा रचित दो ग्रन्थ 'हस्तामलक' एवं 'रावण-मंदोदरी संवाद' तथा फुटकर पद माने जाते हैं । भाण साहब का समय 1700 - 1800 ई. के मध्य माना जाता है । इनके ऊपर संत कबीर का गहरा प्रभावन पड़ा था; यहाँ तक कि इन्हें सौराष्ट्र का कबीर कहा जाता है । यह प्रभाव इनके पुत्र, रापर के गादीपति खीम साहब और प्रमुख शिष्य रवि साहब की रचनाओं के माध्यम से पल्लवित होता हुआ, इनकी शिष्य-परम्परा की रचनाओं में देखा जा सकता है । भाण साहब का शिष्य-मंडल भाण-फौज के नाम से प्रसिद्ध था । इनकी गद्दी के अधिकारी इनके प्रमुख शिष्य रवि साहब हुए, जिनका नाम जोड़कर, रविभाण सम्प्रदाय कहलाने लगा ।

रवि साहब (1726-1863 ई.) का जन्म तणछा गाँव में एक वैश्य परिवार में हुआ था । इन्होंने संत भाणदास से दीक्षा प्राप्त कर गद्दी स्थापित की थी । इन्होंने गुजराती एवं हिन्दी, दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है । इनकी रचनाओं की भाषा सधुक्कड़ी है । ये रामकबीरिया में विश्वास रखनेवाले थे और इनकी समाधि पर रामचन्द्रजी का मंदिर बना है जो कि संतों की उच्च कोटि की समन्वय-भावना का प्रतीक है । इनके हिन्दी ग्रन्थों में बोध चिन्तामणि, रामगुंजार चिंतामणि, आत्मलक्ष चिंतामणि, रविभाण प्रश्नोत्तरी (सूर की भ्रमर-गीत शैली पर) हैं । फुटकर काव्य में गुजराती भाषा के ग्रन्थों के बीच प्राप्त साखियाँ, स्फुट पद, उलटबासियाँ इत्यादि हैं । इन ग्रन्थों के मुख्य विषय योग-साधना, ब्रह्मसाधना, संत-समागम आदि हैं । डॉ. नागर ने इनकी रचनाओं का विशेलेषण करते हुए लिखा है कि, 'इनकी रचनाओं में एक ओर जहाँ परिहारी, पिया, बालम, प्रेम-लहर आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा मधुर भावों की अभिव्यक्ति हुई है, वहाँ दूसरी ओर अकथ कहानी, अणलिंगी, अनभेखुमारी, अलख निरंजन, आदि संत-साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली के द्वारा गूढ़ ब्रह्मज्ञान की भी अभिव्यक्ति हुई है ।'[35] इस सम्प्रदाय के काव्य पर विस्तृत अनुसंधान अपेक्षित है । रवि साहब की गूढ़ ज्ञानयुक्त काव्य शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

संतो बूजे बावन धारा ।
जाके हरदे गुरुगम प्रगटे, सो खेले चोधारा ।
पाँच पचीस परिब्रह्म से उपजे, स्याना समजी जावे ।
चोई दिशे सोइ रमे अकेला, आपे नाव चलावे ।[36]

आदि ।

वस्ताविश्वंभर (ईसा की 18वीं शताब्दी मध्य)

इनका मूल नाम वस्ताराम था और रामानंद सम्प्रदाय के विश्वंभरदासजी से दीक्षा लेने के उपरांत, अपने गुरु का नाम जोडकर इन्होंने अपने को वस्ताविश्वंभर कहलाना पसंद किया था । ये खंभात के निकट आए सकरपुर गाँव के निवासी थे । ये 'अखा' परम्परा के संत प्रतीत होते हैं क्योंकि इनके काव्य में 'अखा' काव्य के कथ्य एवं शिल्प का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । इन्होंने लगभग ढाई हजार साखियाँ लिखी हैं । इनके पदों की संख्या तीन सौ के करीब मानी जाती हैं । सभी पद विभिन्न राग-रागिनियों में बद्ध हैं जिनसे उनके संगीत - ज्ञान का परिचय भी मिलता है । साखियों एवं पदों के उपरांत इनके रचे 'गुरु गीता' एवं 'मंगल काव्य' ग्रन्थ भी हैं । रामानंदी सम्प्रदाय से प्रभावित इस कवि के काव्य में कबीर के समान खंडनात्मक प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं, क्योंकि इन्होंने मिथ्याचारियों एवं पाखंडियों की कटु आलोचना करी है और सहज साधना की हिमायत । वस्ता के काव्य में मौलिक प्रतीकों एवं उपमाओं का प्रयोग मिलता है । सदाचरण और नीति विषयक उपदेशों के मध्य कहीं वस्ता ने हरि के विरह की अग्नि को तीव्रतम करने के महत्व को समझाया है तो कहीं वेदोपनिषद् के 'पूर्णमिदं' को सरल भाषा में अपने ढंग से प्रस्तुत किया है । एक उदाहरण देखिए -

पूरण पूरण के प्रेम से, पूरण पूरण की छोल ।
वस्ता विश्वंभर स्वयंभरा, एक ही झाकझोल ।
विरह बिना हरिना मळे, कीजे कोटि उपाय ।
रोम रोम में विरह लगा, अन्य कशुं न सुहाय ।
'वस्ता विश्वंभर' जब मळे, तन मन शीतल थाय ।[37]

गुजरात के मध्यकालीन ज्ञानाश्रयी सन्तों के काव्य पर परिचयात्मक एवं तुलनात्मक कार्य अधिक हुए हैं, शोध-परक गहन अनुशीलन बहुत कम । अनुसंधानकर्ताओं के लिए अभी भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करने का अवकाश है । उसके साथ ही आवश्यकता है ऐसी साहित्यिक संस्थाओं की, जो इनके अप्रकाशित साहित्य के पाठानुसंधान एवं प्रकाशन का कार्य करा सकें ।

गुजरात में प्रेमाश्रयी अर्थात शुद्ध सूफी सन्तों के काव्य पर अभी तक कोई भी व्यवस्थित शोध-कार्य नहीं हो सका है । दो शोध-कर्ताओं ने इस विषय पर पीएच.डी. करने का बीड़ा तो उठाया, परन्तु मेरी जानकारी में अभी तक कोई विशेष प्रगति इस कार्य में नहीं

हुई है । इसका विशेष कारण यही है कि यह सभी साहित्य **फारसी लिपि** में है और श्रम-साध्य है । **फारसी लिपि** में बद्ध गूजरी को उर्दू के समान, हिन्दी की एक शैली स्वीकार करने पर ही, इसका हिन्दी के शोधकर्ताओं द्वारा अनुशीलन संभव है । डॉ. अम्बाशंकर नागर एवं स्वर्गीय प्रो. अल्लाबख्श ने अपने 'हिन्दुस्तानी काव्यधारा' ग्रन्थ के आधार पर जो जानकारी दी है वह हम यहाँ दे रहे हैं । गुजराती साहित्य एवं गुजरात के उर्दू साहित्य के इतिहासों में भी इनमें से अनेक कवियों की रचनाओं का परिचय प्राप्त होता है ।

हम जानते हैं कि खडी-बोली का सबसे प्राचीन प्रयोग लल्लूलाल एवं सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम्स कॉलेज में, सन् 1803 में किया । दकन के कवि फारसी लिपि में लिखे अपने काव्य को हिन्दवी, हिन्दी, दक्खिनी, रेख्ता या देहलवी कहते थे । गुजरात के अनेक कवियों ने गुजराती लिपि में 'रेख्ता' को एक छंद के रूप में स्वीकार कर ऐसी भाषा के प्रयोग किए हैं जिसमें उर्दू-फारसी के शब्दों का बाहुल्य है । दयाराम के काव्य में से एक उदाहरण देखिए -

सुनियें जु हरि हजरत के बंदे की अरजी है,
बेदिल हुई सब साही साहेब की, क्या मरजी है ।

इस प्रकार की भाषा के अनेक उदाहरण गुजरात के गुजराती एवं हिन्दी कवियों की वाणी में प्राप्त होते हैं । संतवाणी में उन्हें सधुक्कड़ी भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया। उर्दू साहित्य के विद्वानों का मानना है कि गुजरात के सत्रहवीं शताब्दी के कवि मुहम्मद अमीन ने अपनी मसनवी 'यूसुफ-जुलेक' (**फारसी लिपि** में) की भाषा को गूजरी कहते हुए उसे संसार की नेमत कहा था -

सुनो मतलब अब यूँ अमीं का,
लिखी गूजरी मने यूसुप जुलेखा,
हर एक जगह है किस्सा फारसी में,
कि बूझे हर कुदाम इसकी हकीकत,
बड़ी हैं गूजरी जग बीच नेमत ।[38]

इससे यह पता चलता है कि जिस प्रकार तुलसी, सूर तथा गुजरात के भी अनेक सगुणभक्तों ने संस्कृत भाषा में लिखे रामचरित, भागवत तथा दशम् स्कंध आदि की कथाओं को जन-जन की सुविधा के लिए अवधी, ब्रज अथवा अन्य भाषाओं में मौलिक अथवा

अनुवाद द्वारा सुलभ बनाया, इसीप्रकार गुजरात के इन कवियों ने जन-भाषा में (मगर फारसी लिपि में) अपने कथा-काव्यों को प्रस्तुत किया । डॉ. नागर के मत से, ''गुजरात के अंचल से प्राप्त 'गुजरी अथवा गूजरी भाषा' खुसरो की हिन्दवी और दक्षिण के कवियों की दक्खिनी के बीच की कडी है । अब तक खड़ी-बोली की जो शोध-खोज हुई है, उससे पता चलता है कि इस भाषा का प्रचलन गुजरात में 12वीं से 18वीं शताब्दी तक था । यहीं से यह दकन गई और 'दकनी' कहलाई और 18वीं शती के बाद इसी भाषा से साहित्यिक हिन्दी और साहित्यिक उर्दू का विकास हुआ ।'[39]

इस दृष्टि से गुजरात में **फारसी लिपि** में लिखे इस सूफी काव्य का महत्व काफी बढ़ जाता है । यहाँ हम पन्द्रहवीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के मध्य हुए प्रेमाश्रयी शाखा के उन सूफी सन्तों के काव्य का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनकी भाषा गूजरी है और लिपि **फारसी** ।

सैयद मुहम्मद जौनपुरी का समय 1443 से 1504 ई. माना जाता है । ये पन्द्रहवीं शताब्दी के एक महत्वपूर्ण संत थे । इनके जन्मस्थान इत्यादि का विशेष परिचय नहीं मिलता। वैसे ये मेंहदी सम्प्रदाय के माने जाते हैं । इनकी रचना-शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

चन्दर कहे तारायन कू, सूरज देखो आय ।
ऐसा भगवन्ता जो भेटिया, दुष्ट पाप छुट जाए ।[40]

शेख बहाउद्दीन बाजन (1388-1506 ई. मध्य)

ये अहमदाबाद के थे इनके काव्य में तसब्वुफ और भारतीय दर्शन का समन्वय प्राप्त होता है परन्तु छन्दविधान भारतीय है । इसके साथ ही इन्होंने हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय का कार्य भी किया । इनका अभी तक उपलब्ध काव्य-संग्रह 'खजानाए रहमत' है । इनकी रचना - शैली देखिए :

भौंरा लेवे फूल रस, रसिया लेवे बास,
माली सींचे आसकर, भौंरा खड़ा उदास ।
बाजन जीव अमर अहे मूवा न कहियो कोय,
जो ए कोई मूवा कहे, मूवा ए ही होय ।[41]

काजी महमूद दरियायी (1468-1534 ई.)

इनका जन्म बालासिनोर के पास वीरपुर गाँव में हुआ था । ये भी पहुँचे हुए सूफी

संत थे । इन्होंने भगवान को पुरुष मानकर, प्रेमिका-भाव से विरह की तीव्र व्याकुलता एवं मिलन की तीव्र उत्कंठा को अत्यंत भावपूर्ण शैली में व्यक्त किया है । इनकी रचनाएं अधिकांशतः राग-रागिनीबद्ध हैं, जिनसे इनके संगीत - ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है । एक उदाहरण देखिए :

राग : मल्हार

आयोरी मुझ मिलन के काज,
तुझ पर प्यार मेरा है आज ।
तपती थी नित जपती थी ।
तुझ कारन भी खपती थी ।
कह सकी तो मुझ राखें ।
जिन जिन आगे कर ज नाखें ।
छुपाता रहता हूँ तुझ पास ।
क्यूं न मिले तू रासक रास ।
महमूद परगट न कीजिए प्यार ।
लोक जानें तो आणे खार ।[42]

उपर्युक्त काव्य में हम देख सकते हैं कि गूजरी अथवा खड़ी बोली हिन्दी के मध्यकालीन स्वरूप का वह रूप व्यवहृत हुआ है जिसमें कहीं कहीं गुजराती शब्द एवं कारक चिह्न भी आ गए हैं । इसीलिए डॉ. नागर ने इसे हिन्दुस्तानी कहा है । हम इसे राष्ट्रभाषा कह सकते हैं क्योंकि भारत की भविष्य की राष्ट्रभाषा में भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों को अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित करके, उसे और भी अधिक लोकभाषा का रूप देना होगा ।हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने में इन सन्तों एवं भक्ति आंदोलनों को प्रचारित एवं प्रसारित करनेवाले आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान है, इसमें कोई संदेह नहीं ।

वैसे कलापक्ष की दृष्टि से इन सूफी संतों के काव्य में काफी कुछ शिथिलताएं देखने को मिलती हैं ।

सूफी शाह अली जीव गामधनी

इनके जन्म समय अथवा स्थान के विषय में कोई सामग्री अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है । अहमदाबाद में इनका मजार अवश्य है । यह पहुँचे हुए सूफी संत थे । इनका एक

नज़्म-संग्रह मिला है जिसमें एकेश्वरवाद एवं अद्वैतवाद के समन्वय का प्रयास है और अपने इष्टदेव के प्रति गहन अनुभूतियों से परिपूर्ण प्रेम से ओतप्रोत अभिव्यक्तियाँ हैं । इनकी भाषा में गुजराती एवं फारसी शब्दावली की बहुलता है । एक उदाहरण देखिए -

लोक परलोक

इस बस्ती का क्या पतियारा,
आज तुम्हूँ कल दूजों मारा ।
सो क्यूं तिस कूं धरे प्यारा,
ये जग बाँदी उस जग की रे,
जहाँ न निमटे खेल सबेरे,
जानूँ बात सही कर मेरी ।

खूब मुहम्मद चिश्ती 'खूब'

'खूब' साहब अहमदाबाद के रहने वाले, एक प्रसिद्ध सूफी संत थे । ये गुजराती के साथ, अरबी, फारसी भाषाओं के ज्ञाता थे और अपने विविध विषयों के ज्ञान के कारण, बहुज्ञ माने जाते थे । इन्हें केवल ज्योतिष, आयुर्वेद, दर्शन एवं संगीत का ज्ञान ही नहीं था बल्कि ये काव्य-कला के क्षेत्र में छंदशास्त्र एवं अलंकार-शास्त्र में भी निपुण थे । इनके फारसी लिपि में लिखी तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं - खूब तरंग, छंद छंदा एवं भाव भेद । खूब तरंग, 53 अध्यायोंवाली आध्यात्मिक मसनवी है जिसमे कुछ प्रेरक कथाओं के माध्यम से प्रेम के महत्व को समझाया गया है । इस प्रदेश में सूफी-संतों के प्रसिद्ध सम्प्रदायों में से चिश्ती सम्प्रदाय भी एक है । खूब तरंग में 30 पंक्तियों में वर्णित एक प्रसंग का कुछ अंश, इनकी रचनाशैली का परिचय देने के लिए यहाँ दिया जा रहा है -

एक सिकन्दर का था यार ।
पूछा उन्हें सो एकस बार ।
तुम सब मश्रिक मगरिब लेत ।
किस हिकमत जंग फतह केत ।
सिकन्दर ने तब दिया जवाब ।.....
..... दिल मां आवे जेती बार ।

रहे खुदा सुं तेती बार ॥
यह जमइयत इसे संभाल ।
हर ठाँह रह हक सुं हर हाल ॥
जे कहवे वह करूं सो काम ।
पछी खुदा का होऊँ तमाम ॥
जान 'तफरका' इसीका नांव ।
हक बिसरे की है यह ठाँव ।

अभी तक फारसी भाषा में लिखे उपर्युक्त सूफी संतों की वाणी का केवल परिचयात्मक अध्ययन ही हुआ है । वास्तविक शोध होने पर संभव है अन्य सूफी संतों की वाणी का पता चले और उनकी काव्यकला का विस्तृत अनुशीलन, इस क्षेत्र में कुछ नए तथ्यों पर प्रकाश डाले ।[40]

जहाँ एक ओर गुजरात में धर्म-सम्प्रदायों के विभिन्न आचार्यों, अनुयायियों एवं विद्वानों ने अपने-अपने सिद्धान्तों और मान्यताओं के प्रचारार्थ साहित्य का सृजन किया, वहाँ सम्प्रदाय निरपेक्ष साहित्य की रचना की हुई थी । विशुद्ध साहित्य-मूल्यों पर आधारित शृंगार एवं भक्ति प्रधान साहित्य रचनाओं का भी यहाँ विपुल मात्रा में सृजन हुआ था । डॉ. भगवत शरण अग्रवाल के मतानुसार - 'गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में रीतिकाव्य परम्परा से संबंधित दो प्रकार के कवियों की रचनाएं मिली हैं । एक तो स्वयं राजाओं द्वारा रचित ग्रन्थ और दूसरे राज्याश्रित कवियों द्वारा रचित ग्रन्थ । राज्याश्रित कवियों में अनेक चारण कवियों की रचनाएं भी प्राप्त होती हैं जिन पर परिचयात्मक शोधकार्य हो चुका है । विषय की दृष्टि से इस धारा के काव्य में, लक्ष्य-ग्रन्थ एवं लक्षण-ग्रन्थ, दोनों ही मिलते हैं । लक्ष्य-ग्रन्थों मे महाकाव्य, खण्डकाव्य, सतसई, हजारा, बावनियाँ एवं शृंगार तथा वीर रसात्मक काव्य के साथ साथ नीति एवं उपदेश प्रधान काव्य के ग्रन्थ भी मिले हैं ।

मध्यकालीन गुजरात में, विशेषकर सौराष्ट्र में अनेक रजवाड़े थे । कच्छ में अलग राज्यशासन था । इनके राजाओं के राजनीतिक ही नहीं, वैवाहिक इत्यादि संबंध भी सिंध, राजस्थान, मध्यभारत एवं उत्तर भारत के राजाओं, महाराजाओं के साथ थे । यह उस काल के राजाओं की एक मनोवृत्ति जैसी बन गई थी । इनमें से कुछ राजा ऐसे भी थे, जो वास्तव में काव्य रसिक थे । ऐसे राजाओं ने न केवल कवियों को राज्याश्रय दिया बल्कि स्वयं भी उच्च कोटि की काव्य रचना की । कच्छ के लखपतिसिंह ने तो भुज में ब्रजभाषा काव्य

पाठशाला की स्थापना तक की जिसमें निःशुल्क काव्य-शिक्षा दी जाती थी और इसलिए राजस्थान, उत्तर भारत एवं मध्य भारत के सामन्ती वातावरण में, जिस प्रकार का काव्य उस काल में रचा गया, लगभग उसी प्रकार का काव्य यहाँ भी रचा गया। फिर भी यहाँ रचे जाने वाले काव्य में दो ऐसी विशेषताएं प्राप्त होती हैं जो अन्य हिन्दी प्रदेशों के तत्कालीन काव्य में नहीं मिलती। एक तो प्रबंध काव्य रचना और दूसरे किसी पाठशाला में व्यवस्थित काव्य-शिक्षा प्राप्त कवियों द्वारा काव्य-रचना।

वैसे तो रीति परम्परा के लक्षण, गुजरात के जैन साधुओं के काव्य से मिलने शुरु हो जाते हैं। डॉ. पाठक के अनुसार, 'विरागयुक्त जैन कवियों के रासो, फागु, चउपाई, बारहमासा आदि काव्य-ग्रन्थों में विविध प्रकार के नायक-नायिकाओं की विभिन्न शृंगार भाव-पूर्ण मनस्थितियों के काव्यांकन विपुल मात्रा में प्राप्त होते हैं; किन्तु इन्हें रीतिकालीन शृंगार काव्य परम्परा के प्रणेता कवियों के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता' गुजरात के वैष्णव कवियों इत्यादि ने भी अपने शृंगार-परक कृष्ण-काव्य में नायक-नायिकाओं की शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओं का चित्रण किया है किन्तु वास्तव में स्थूल शृंगार का विस्तृत लौकिक चित्रण, चारणी साहित्य में प्राप्त होता है।

ब्रजभाषा काव्य पाठशाला

गुजरात में ब्रजभाषा काव्य सृजन की भूमिका में कच्छ की ब्रजभाषा काव्य पाठशाला का प्रदान अप्रतिम रहा है। यहाँ से प्रशिक्षित सैंकड़ों समर्थ ब्रजभाषा कवियों ने अपने वरिष्ठ साहित्य सृजन से हिन्दी काव्य कोश को समृद्ध किया है।

महाराजा लखपतिसिंह की प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं प्रश्रय से इस पाठशाला की स्थापना हुई और लगभग 200 वर्ष तक यह सुचारु रूप से चलती रही। दुर्भाग्य का विषय तो यह है कि जैसे ही देश स्वतंत्र हुआ कि यह संस्था बन्द कर देनी पड़ी। राज्याश्रय में पल्लवित तथा पुष्पित यह काव्य पाठशाला स्वतंत्र देश की सत्ता में अग्रसर न हो पाई और हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय यहीं समाप्त कर देना पड़ा।

ब्रजभाषा काव्य पाठशाला की स्थापना सन् 1747 ई. में तथा 1948 में जब कच्छ राज्य वृहद भारत के केन्द्रीय सत्ता में समाविष्ट हुआ तभी इसका समापन संस्कार भी कर दिया गया। इस पाठशाला में ब्रजभाषा के माध्यम से काव्य के दशांगों की शिक्षा दी जाती थी। इसमें प्रवेशायु 14 से 30 वर्ष के लगभग थी। पाठ्यक्रम तीन से पाँच वर्ष का था।

शिक्षा ही नहीं, भोजन-निवास आदि भी निःशुल्क थे । इस पाठशाला में वैसे तो दूर दूर से लोग आते थे फिर भी गुजरात एवं राजस्थान के शिक्षार्थियों की संख्या अधिक थी । यहां अर्थशास्त्र का 'माँग और पूर्ति' का नियम, देखने को मिलता है । ये दोनों प्रदेश अपने सैंकड़ों राज्य रजवाड़ों के कारण, हजारों की संख्या में चारणों, भाटों एवं आश्रित कवियों का पालन पोषण करते थे । इसीलिए हम देखते हैं कि इस पाठशाला के लगभग 350 प्रशिक्षार्थियों में से अधिकांश, चारण एवं भाट जातियों के थे । किन्तु इसके साथ ही एक प्रश्न यह भी उठता है कि 201 वर्ष में केवल 350 विद्यार्थी ? वास्तव में यह संख्या तीन चार हजार से कम नहीं होनी चाहिए । समय की चादर ने वास्तविकता को ढँक दिया शायद कभी कहीं ओर से इस संबंध में कुछ और समग्री प्राप्त हो ।

महाराव लखपतसिंह स्वयं एक उच्चकोटि के कवि थे । उनका साहित्यिक परिचय आगे दिया जाएगा । उन्होंने इस पाठशाला के आचार्य के रूप में काव्य क्षेत्र के विद्वान मनीषी जैनाचार्य कनककुशल एवं उनके शिष्य कुँवर कुशल को रखा था और उन्हें भट्टारक की पदवी से सम्मानित कर जागीर प्रदान की थी । (कच्छ में इस परम्परा को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न हो रहे हैं । वहाँ आदिपुर में, इन्सटीट्यूट ऑफ सिन्धोलॉजी के द्वारा सिन्धी के साहित्यिकों के रहने एवं साहित्य रचना करने के लिए कुछ निवास बन चुके हैं ।) ब्रजभाषा पाठशाला का संचालन लगभग एक शताब्दी तक जैनाचार्यो-कुशल परिवार के हाथ में रहा, बाद को उसके संचालन बदलने के साथ-साथ उसके स्थान एवं स्तर में परिवर्तन होते गए। कच्छ के महारावों के साथ साथ वहाँ के अधिकारी वर्ग में भी साहित्यिक संस्कारों का सिंचन होता रहा । दीवान मणिभाई जसभाई ने, पाठशाला के परीक्षार्थियों के लिए, 'बावनी' पर पुरस्कार देने की परम्परा प्रारम्भ करी । गुजरात में रचित लगभग 65 बावनियाँ, अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं । कुछ विद्वान इनकी संख्या डेढ सौ से अधिक बताते हैं । इन बावनियों की रचना के पीछे, इस पाठशाला की शिक्षा-प्रणाली का बहुत बड़ा योगदान है । पुरस्कृत बावनियों की रचना के पीछे, इस पाठशाला की शिक्षा प्रणाली का बड़ा योगदान है । पुरस्कृत बावनियाँ, कच्छ राज्य के द्वारा प्रकाशित भी कराई जाती थीं और विद्यार्थियों को भेंट रूप भी दी जाती थी । कवि पद से सम्मानित ये साधक बाद को विभिन्न राज्याश्रयों की खोज में निकल जाते थे । डॉ. निर्मला आसनानी ने लिखा है - ''कच्छ की काव्य-पाठशाला रीतिकालीन साहित्य की सभी परम्पराओं एवं प्रवृत्तियों से अलंकृत थी ।..... काव्यांगों एवं शैली के निरूपण में ही ये कवि पारंगत नहीं थे, बल्कि इतर ज्ञान में भी इनका फलक विस्तृत

था । काव्यशास्त्र के अलावा इन कवियों ने ज्योतिष, संगीत, नृत्य, अश्वशास्त्र, वैद्यक, कामशास्त्र, स्वरोदयशास्त्र, योगशास्त्र, दर्शन-पुराण एवं सामुद्रिक शास्त्र आदि के महत्वपूर्ण ग्रंथ रचे थे । इस पाठशाला के अनेक कवियों ने डिंगल में पद्यरचना की है और अनेक कवियों के काव्य में खडी बोली एवं फारसी, अरबी भाषाओं के शब्द-प्रयोग भी मिलते हैं ।

मध्यकालीन ब्रजकाव्य सम्पदा का प्रभाव इसके परवर्ती काल में भी व्यापक रूप से पड़ा था, अठारहवीं शताब्दी में पच्चीस में तीस तक ऐसे कवि गुजरात में हुए हैं जिन्होंने हिन्दी में शास्त्रीय काव्य लिखा है । शास्त्रीय शैली में आख्यान काव्य लिखने वाले कवियों में लीमड़ी के राजा हरभमजी के आश्रित अमरसिंह बारोट, गोपालदास, प्रेमानन्द स्वामी, आदि कवियों का नाम उल्लेखनीय है । अनेक जैन कवियों ने इस शताब्दी में शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त शास्त्रीय काव्य की स्फुट संग्रहात्मक तथा प्रबन्धात्मक रचनाएं की हैं, कनक-कुशल, कुंवर कुशल जीवनविजय, मयाचन्द आदि ऐसे ही जैन कवि हैं । प्रवीण सागर जैसा अनूठा प्रबन्ध काव्य भी इसी समय में लिखा गया है, जिसके मूल कर्ता राजकोट के महाराजा कुमार महेरामण सिंह माने जाते हैं, परन्तु इनके साथ इनके मित्र तथा आश्रित कवि जीवन विजय, जैसा लांगा, पिंगलसी गढ़वी, आदि का भी इस रचना की पूर्ति में योग माना जाता है । शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त शास्त्रीय काव्य की स्फुट शास्त्रीय काव्य रचना करने वाले कवियों में आदितराम केवलराम, कनक कुशल, कुँवर कुशल केवलराम, गंजन, जसुराम, जैसा लांगा, दयाराम, दलपत, दलपतराय, बंशीधर, बन्नु बारोट, बीसाजी, महासिंह सेवक, माणिक कविराज आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं । आशय यह कि इस शताब्दि में गुजरात में हिन्दी की शास्त्रीय काव्य-परम्परा पूर्ण रूप से विकसित हो गयी थी, जिसके परिणाम स्वरूप गुजरात में शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ साहित्य हिन्दी में लिखा गया । शुद्ध शास्त्रीय काव्य की दृष्टि से ही नहीं वरन् गुजरात की हिन्दी सामान्य काव्य परम्परा की व्यापकता, लोकप्रियता तथा वैविध्य एवं साहित्यिक उत्कृष्टता आदि की दृष्टियों से भी यह शताब्दी अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि 19वीं शताब्दी में काव्य परम्परा ने अपने विकास की चरम सीमा प्राप्त कर ली थी । इस शताब्दी में पचास-साठ कवि ऐसे गुजरात में मिल जाते हैं जिन्होंने शास्त्रीय काव्य लिखा है । अब तक की शोधों के परिणाम स्वरूप जिन कवियों के विषय में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त हुई है उनमें से आठ वैष्णव, तीन सूफी, एक स्वामी नारायणी इक्कीस संत और छै जैन कवियों को छोड़कर शेष अधिकांश कवियों ने शुद्ध

शास्त्रीय काव्य लिखा है । शास्त्रीय काव्येतर साहित्य के उक्त कवियों में भी अनेक कवि ऐसे हैं, जिन्हें शास्त्रीय काव्य के कवियों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि इनमें से अनेक कवि ऐसे हैं जिनका विषय ही विशुद्ध धार्मिक है तथा इनका मूल प्रयोजन काव्य रचना करना न होकर, अपनी धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करना अवश्य है, परन्तु उनकी शैली आदि विशुद्ध साहित्यिक है । अतः ऐसे कवियों को भी शास्त्रीय काव्य लिखने वाले कवियों की कोटि में स्वीकार कर लेना युक्ति युक्त ही कहा जाएगा । वस्तुतः इस समय कुछ संत तथा सूफी कवियों को छोड़कर शेष सभी कवियों की रचना शैली आदि विशुद्ध शास्त्रीय ही है । अतः यह कहा जा सकता है कि इस शताब्दि में सामान्य़ रूप से तो गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा अपने विकास की चरम सीमा को प्राप्त हुई ही, परन्तु शास्त्रीय काव्य की परम्परा विशेष रूप से, अन्य सभी धाराओं की तुलना में विकसित हुई । आशय यह कि 19वीं शताब्दी गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के लिए सामान्य रूप से तथा शास्त्रीय काव्य की परम्परा के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है ।

19वीं शताब्दी में जूनागढ़, लखतर, मूली, भिटारा, भुज, ध्रागंध्रा, गोंडल, भावनगर, राजकोट आदि गुजरात, सौराष्ट्र तथा कच्छ की छोटी बड़ी रियासतों में चारण तथा चारणेतर कवियों को राजाश्रय प्राप्त था, तथा ध्रागंध्रा, खाकर, ध्रौल, लखतर, खाखर भुज, पालीताणा, बरल आदि रियासतों के राजा महाराजा स्वयं हिन्दी के शास्त्रीय काव्य की परम्परा को विकसित कर रहे थे । वैसे भी शास्त्रीय काव्य के गठन-पाठन की परम्परा इस समय गुजरात में इतनी अधिक सुस्थापित हो चुकी थी कि इस समय हिन्दी के काव्य ज्ञान से शून्य व्यक्ति गवार गिना जाता था । आदितराम, उन्नड़ जी, केशव अयाची, केसरी सिंह, गोपाल जगदेव, तुलजाराम, दयाशंकर शामजी त्रिपाठी, दलपतराम, पाताभाई, पिंगलसिंह पाता भाई, रणमल अदाभाई, श्यामलजी जयसिंह, हीराचन्द कानजी आदि कवियों को इस शताब्दी के प्रमुख कवि माना जा सकता है ।

20वीं शताब्दी में जिस प्रकार हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचीन शास्त्रीय काव्य की परम्परा प्रायः समाप्त हो जाती है और आधुनिक काव्य जिसे पूर्णतः शास्त्रीय काव्य नहीं कहा जा सकता, हिन्दी में सुस्थापित हो जाता है, उसी प्रकार गुजरात में भी हिन्दी की मध्यकालीन शास्त्रीय काव्य की परम्परा शनैः शनैः समाप्त होने लगती है और आधुनिक काव्य का सूत्रपात भी होने लगता है । इन्द्र बसावड़ा जैसे आधुनिक शैली के गद्यकार लेखकों के समान चमन जैसे आधुनिक कवि भी गुजरात में हैं । गुजरात की पुरानी पीढ़ी आज भी प्राचीन

अनेक कवि काव्य रचना में प्रवृत्त हैं। प्राचीन परिपाटी के कवियों में खेतदान जी, गंगासुत, जसकरणजी, दूलाभाई काग, दूलेराय काराणी, दानाभाई महातम भाई बैराभाई कविराज तथा हर्षदराय आदि के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। आशय यह कि वर्तमान शताब्दी में गुजरात में हिन्दी काव्य की प्राचीन परम्परा नवीन रूप ले रही है, इस संक्रमण काल में भविष्य की सुनिश्चित कल्पना नहीं की जा सकती। साथ ही गोविन्द गिल्ला भाई के अध्ययन के लिए गुजरात की शास्त्रीय साहित्य तथा शास्त्रीय काव्य की परम्परा का सिंहावलोकन मात्र ही अपेक्षित है।

जिस प्रकार गुजरात में ब्रजभाषा काव्य के मौलिक सृजन की समृद्ध परम्परा रही है, उसी प्रकार यहाँ ग्रन्थ सम्पादन एवं संकलन कर्ताओं की कमी भी नहीं रही है।

गुजरात में जो ग्रन्थ सम्पादित या संग्रहीत हुए हैं, उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. धर्म-गुरुओं एवं आचार्यों द्वारा प्रेरणा या प्रोत्साहन देकर ग्रंथ सम्पादन कराना तथा स्वयं भी करना।
2. राजाओं, सामन्तों, सेठ साहूकारों द्वारा निजी रुचि व शौक के लिए विद्वानों एवं व्यावसायिक लिपिकारों से ग्रन्थ तैयार कराना।
3. स्वयं विद्वान साहित्यकारों द्वारा व्यवस्थित रूप से ग्रन्थ सम्पादन करके तैयार करना।

जहाँ तक धर्माचार्यों एवं गुरुवर्ग के द्वारा ग्रंथ संयोजना की भूमिका का प्रश्न है वहाँ कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों के द्वारा यह कार्य वृहद् पटल पर सम्पन्न हुआ था। प्रत्येक जैन मंदिर या उपासना केन्द्र से संलग्न एक ग्रन्थागार देखा जा सकता है। वैसे भी जैन धर्म के विद्वान लेखकों का परिमाण अत्यधिक है। इन विद्वानों ने भी अपने अपने निजी पुस्तकालय स्थापित किए थे और उसमें अनेक संदर्भ ग्रन्थ एकत्र भी किए थे, इनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से इनके सहयोगियों, अनुयायियों एवं अन्यान्य विद्वानों ने ब्रजभाषा में रचे गए जैन ग्रंथों को संकलित तथा सम्पादित किया था।

इसी प्रकार बौद्ध मतानुयायी भिक्षुओं एवं साधुओं के द्वारा भी गुजरात में ग्रंथ सम्पादन के कार्य सम्पन्न हुए हैं।

पुष्टिमार्ग में ब्रजभाषा साहित्य एवं व्यवहार की प्रमुख भाषा रही है, यदि यह कहा जाए कि गुजरात में ब्रजभाषा को लोकप्रिय बनाने में पुष्टिमार्ग का सर्वोपरि प्रदान है, तो यह

अतिशयोंक्ति नहीं होगी । गुजरात में प्रायः अधिकांश ग्रामों में पुष्टिमार्गीय हवेलियाँ एवं मंदिर हैं । इन मन्दिरों एवं हवेलियों में नित्य वार्ताओं, वचनामृतों एवं नित्यपाठादि के संदर्भ में सत्संगी चर्चाएं होती हैं ।

साथ में काव्य की विशिष्ट कृतियों का समूह गान भी होता है इस प्रकार सूर के समयानुकूल सेवा से सम्पृक्त कीर्तन पदों का गायन, नन्ददास जी कृत भ्रमरगीत का गायन, श्री यमुनाजी के इकतालीस पदों का गायन, गो हरिराय जी कृत नित्यलीला सेवाभावना का गायन इन्हीं की रचित दानलीला का समूहगान, सूरदास जी के विनयपदों का गायन और गुजराती में लिखे अनेक धोल पदों एवं गरवा गीतों के भी समूहगायन की परम्परा देखी जा सकती है ।[41]

वार्ताओं तथा नित्यपाठों के संकलन करके विभिन्न पांडुलिपियाँ तैयार की जाती रही हैं किन्तु व्यवस्थित रूप सम्पादन की वैज्ञानिक परम्परा का प्रारम्भ गोस्वामी हरिराय जी (सं. 1700) से माना जा सकता है, उन्होंने स्वयं दो सौ बावन तथा चौरासी वार्ताओं को वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित करके सम्पादित किया था और ब्रजभाषा साहित्य के इतिहास में सम्पादन की कला का सुन्दतम प्रारंभिक रूप यहीं से माना जा सकता है । इससे पहले संकलित एवं संग्रहीत ग्रन्थों को तैयार करने की ही परम्परा रही है । शुद्ध रूप से सम्पादित ग्रंथों का प्रारम्भ वार्ता साहित्य से ही माना जाना चाहिए ।

पुष्टिमार्ग में काव्य संकलन के दूसरे दौर में कीर्तन साहित्य को व्यवस्थित रूप से सम्पादित किया गया । इसमें कीर्तन के विषय को तीन वर्गों में विभाजित करके सम्पादित किया गया-

1. नित्य के पद
2. वर्षोत्सव के पद तथा
3. वसंत होरी धमार के पद

नित्य के पदों में मंदिर की अष्टयामी और अष्टझाकियों में विभक्त सेवा-व्यवस्था के अनुसार विषय और राग के अनुसार पद सम्पादित किये गए हैं । वर्षोत्सव में वर्ष में सम्पन्न सभी मनोरथों, त्यौहारों तथा विशिष्ट आयोजनों से सम्बन्धित कीर्तन पदों को सम्पादित किया जाता रहा है । इसी प्रकार वसंत होरी धमार के पदों में फागुन माह के वसंत तथा होली के धमार गायन के पदों को सम्पादित करके संग्रह तैयार किए जाते रहे हैं ।

इसी समय में विभिन्न कवियों के पद भी विद्वानों ने संकलित करके सम्पादित कराए हैं, इनमें सम्पादक का नामोल्लेख नहीं मिलता, जिस प्रकार सूरदास जी ने तो नित्य एवं वर्ष की सेवा के अनुरूप ही प्रसिद्ध और मुक्तक कीर्तन पद रचे थे, किंतु अन्य काव्य रसिकों एवं विद्वानों ने उन तमाम पदों को श्रीमद्भागवत के स्कंधानुसार कथाक्रम में निबंधित करके सम्पादित किया और उसे सूरसागर का श्रेष्ठ रूप प्रदान कर दिया । इसीलिए सूरसागर के लीलापरक तथा स्कंधपरक संस्करण प्राप्त होते हैं, निश्चित ही ये स्कंधपरक संस्करण जो श्रीमद्भागवत की कथाक्रम का अनुगमन करते हैं, परवर्ती विद्वानों द्वारा सम्पन्न हैं । प्राचीनतम कीर्तन की पांडुलिपियों में संकलित पद लीलापरक तथा मुक्तक रूप में ही संकलित हैं, गुजरात में इस प्रकार का अनेक पांडुलिपियाँ प्राप्त होती हैं ।[42]

गुजरात के अनेक राजाओं, सेठ, सामंतों एवं जमींदार रईसों ने ग्रन्थालयों की स्थापना की थीं, उन्होंने अनेक लोकप्रिय तथा अपनी साहित्यिक अभिरुचि के ग्रन्थ विद्वानों एवं लिपिकारों से तैयार कराये थे । कुछ राजाओं में तो स्वयं भी सृजनात्मक प्रतिभा थी, उन्होंने स्वयं की रचनाओं के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के ग्रन्थ भी सम्पादित कराके संकलित किए थे, ऐसे विद्वानों में महाराजा लखपतिसिंह, महाराव मेहरामण सिंह, जाड़ेजा उमड़ जी, जाडेजा कवि हमीर जी, जाडेजा कवि बेरीसालजी, राजासाहब मानसिंह जी प्रभृति प्रतिभाशील रचनाकारों का उल्लेखनीय स्थान है ।[43]

इन तमाम राजाओं ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ सम्पादित कराए जिनका उल्लेख इसी शोधप्रबंध में अन्यत्र किया गया है ।

तीसरे वर्ग के सम्पादक कार्य में ब्रजभाषा के अधिकारिक हस्ताक्षर थे जो स्वयं रचनाकार तथा साहित्य सृष्टा होने के साथ-साथ एक प्रामाणिक सम्पादित साहित्य के भी पुरस्कर्ता रहे हैं । इस प्रकार के सम्पादक-साहित्यकारों में गुजरात के **गोविंद गिल्लाभाई** का कार्य महत्वपूर्ण स्थान पर है जिन्होंने अपने स्वयं के प्रयास से तथा स्वयं लिपिबद्ध करके अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों को सम्पादित किया था ।

गुजरात में हिन्दी के शास्त्रीय काव्य लक्षण ग्रंथों को सम्पादित या संकलित कराने की स्वस्थ परम्परा रही है, निम्नलिखित विशिष्ट शास्त्रीय काव्य ग्रंथों की व्यवस्थित एवं सम्पादित पांडुलिपियाँ यहाँ प्राप्त होती हैं -

कवि का नाम	शास्त्रीय ग्रन्थ का नाम	शास्त्र का नाम
आदितराम जी	संगीतदित्य	संगीत
आदितराम केवलराम	मान महोत्सव	संगीत
	राग माला	संगीत
ईसरदास बारोट	गरुड़ पुराण	पुराण
उत्तमराम जी	बाबी विलास	ऐतिहासिक
उदयराम बारहट	ओकार्थ एकाक्षरी नाममाला	कोष
उन्नड़ जी	मेघाडम्बर	ऋतु विज्ञान
उन्नड़ जी	भागवत पिंगल	छंद
	महाभारत (तीन पर्व का अनुवाद)	
कनक कुशल	लखपत मंजरी नाममाला	कोष
	रस दीपिका (सुन्दर शृंगार की टीका)	
कल्याण	छंद प्रभाकर	छन्द
	रस चंद्रिका	रस
कुवर कुशल	लखपत जस सिन्धु	काव्य
	लखपत मंजरी नाममाला	कोष
	पारसति नाममाला	कोष
	लखपत पिंगल	छन्द
	गोहड पिंगल	छन्द
कुशलधीर उपाध्याय	रसिकप्रिया का गुजराती अनुवाद	
कृष्णराम भट्ट	सिद्ध भेषजमणिमाला	वैद्यक
केवलराम जी	बाबी विलास	ऐतिहासिक
केशव अयाची	शब्द विभूषण	अलंकार
गोपाल जगदेव	शब्द विभूषण	अलंकार
	अलंकार निधि	अलंकार
	छन्द विधि गति चंद्रिका	छन्द
जसुराम	राजनीति	राजनीति
जयकृष्ण	रूपदीप पिंगल	छन्द

कवि का नाम	शास्त्रीय ग्रन्थ का नाम	शास्त्र का नाम
जीवन लाल	संगीत भाष्य	संगीत
दयानन्द सरस्वती	धर्म और दर्शन सम्बन्ध अनेक ग्रन्थ	
दयाराम	पिंगलसार	छन्द
	तालमाला	संगीत
	रागमाला	संगीत
	अनेक पुष्टिमार्गीय धार्मिक रचना	
दलपत	दलपत विलास	अलंकार
दलपतराय	अलंकार रत्नाकार	अलंकार
	पिंगलभाषा	छन्द
दलपत	दलपत विलास	अलंकार
दलपतराय	अलंकार रत्नाकर	अलंकार
	पिंगलसार	छन्द
दलपतराय	भाषा किरीट	काव्य
देवीदास	राजनीति	राजनीति
नाथूराम सुन्दरजी	संगीत तख्त विनोद	संगीत
नारायण कवि	भक्तमाल की टीका	
नारायण हेमचन्द्र	अनेक हिन्दी ग्रन्थों का अनुवाद	
प्राणनाथ	अनेक धार्मिक ग्रन्थ	
परशुराम गंगाधर दीक्षित	ज्योतिष सार	ज्योतिष
	पट्दर्शन पड़वी	दर्शन
पिंगलशी गढ़वी	वैकुंठ पिंगल	छन्द
पीताम्बर जी	पंचदशी तथा उपनिषदों की टीका	
ब्रह्मानन्द स्वामी	अनेक धार्मिक ग्रन्थ	
बीसाजी	एक सामुद्रिक ग्रन्थ का अनुवाद	
बुधराव	काव्य दिवाकर	काव्य
	अनेकार्थ कोष	कोष
बैनीदास	साहित्य सिन्धु	काव्य

कवि का नाम	शास्त्रीय ग्रन्थ का नाम	शास्त्र का नाम
भारमल	ज्योतिष जड़ाव	ज्योतिष
	ब्रह्मांण्ड पुराण	पुराण
महासिंह सेवक	छन्दसार पिंगल	छन्द
मावल जी जीवाभाई	वीर विनोद की गुजराती टीका	
रणछोड़ भाई उदयराम	रसप्रकाश	रस
	अलंकार प्रकाश	अलंकार
रणमल अदाभाई	रणपिंगल	छन्द
रणमल अदाभाई	प्रवीण सागर की टीका	
	सुन्दर शृंगार की टीका	
रत्नजित	ब्रजभाषा व्याकरण	व्याकरण
	भाषा शब्द सिन्धु	
	भाषा भातुमाला	व्याकरण
रामचन्द्र मोढ	रसपिंगल	छन्द
रंगीलदास	नाममाला	कोष
लखपतसिंह	लखपत शृंगार	काव्य
	लखपतमान मंजरी	कोष
	सुरतरंगिणी संगीत	संगीत
	मृगंद महीरा	संगीत
	राग सागर	संगीत
वजमाल जी मेहडू	अमरकोष भाषा	कोष
विशनजी भवानजी	गोविन्ददास हरिनाममाला	कोष
श्रीपति	हिम्मत प्रकाश	वैद्यक
सवितानारायण	कविप्रिया तथा बिहारी सतसई की टीका	
हजरत खूब मुहम्मद चिश्ती	भाव भेद	अलंकार
हमीर जी रतनू	यादव वंश वर्णन	ऐतिहासिक
	पिंगल प्रकार	छन्द
	लखनपत पिंगल	छन्द

कवि का नाम	शास्त्रीय ग्रन्थ का नाम	शास्त्र का नाम
	हमीरनामामाला	कोष
हम्मीर रावल	हरियश नाममाला	कोष
हमीर	हमीर पिंगल	छन्द
हर्षदराय	राजनीति	राजनीति
हरिनाथ	अलंकार दर्पण	अलंकार
हीराचन्द कानजी	पिंगलादर्श	छन्द

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हिन्दी की प्राचीन पांडुलिपियों के अनुशीलन एवं सम्पादन की एक समृद्ध भूमिका पल्लवित हुई थी, नागरी प्रचारिणी सभा से खोज रिपोर्टों के द्वारा सहस्रों ज्ञात, अज्ञात तथा अल्प ज्ञात कृतियों को उद्घाटित किया गया, कांकरोली के विद्याविभाग से पो. कण्ठमणि शास्त्री ने गो. श्री ब्रजभूषणलालजी महाराज के प्रश्रय में भी बहुत महत्वपूर्ण कृतियों को संकलित तथा सम्पादित किया, गुजरात में लल्लूभाई छगनभाई ने पुष्टिमार्गीय वार्तासाहित्य तथा कीर्तन पदों को व्यवस्थित करके सम्पादित रूप में प्रकाशित किया था, इसी प्रकार द्वारकादास परिख ने भी गुजरात के अनेक पुष्टिमार्गीय ग्रंथों को संकलित एवं सम्पादित किया था ।[44] गुजरात के साहित्य को सम्पादित करने में विशेष रुचि श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी तथा श्री प्रभुदयाल मीतल ने ली, इनके साथ ही कविरत्न गोविन्द जी चतुर्वेदी तथा बाबा बालमुकुन्द ने भी कुछ ग्रन्थों के सम्पादन में गुजरात से प्राप्त पांडुलिपियों को उलटा पलटा था ।[45]

इसी तरह कांकरोली के श्री गोकुलानंद तैलंग तथा नाथद्वारा के रमानाथ शास्त्री ने भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण कार्य किए थे ।

गोविन्द गिल्लाभाई का सम्पादन और संकलन का कार्य इतना महत्वपूर्ण था कि हिन्दी क्षेत्र में पांडुलिपियों की शोध और विवेचना करने वाले स्थापित विद्वानों का ध्यान भी इनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व की ओर गया, मिश्रबन्धुओं ने इनसे लगातार सम्पर्क बनाए रखा तथा अपने इतिहास में इनके उल्लेख के साथ इनके द्वारा प्राप्त सामग्री का भी उपयोग किया ।[46]

आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई ने मात्र पांडुलिपियों की प्रतिलिपियाँ ही तैयार नहीं कराई बल्कि उन्होंने अपने समय तक प्राप्त तथा संकलित समग्र सामग्री का गहन वाचन भी

किया था । शिवसिंह सरोज तथा नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों को उन्होंने स्थान-स्थान पर रेखांकित किया है ।[47]

गोविन्द गिल्लाभाई ने जिस व्यवस्था, अनुशासन और मान्य आचार्यसंहिता के आधार पर हिन्दी ग्रंथों का वैज्ञानिक ढंग के सम्पादन किया है वह हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग ही था । इससे पहले जो भी ग्रन्थ सम्पादित हुए थे, उनमें लम्बी चौड़ी भूमिका लिखकर ही सम्पादन दायित्व की इतिश्री मान ली गई थी, लेकिन सम्पादन कला का जो वैशिष्ट्य गोविन्द गिल्लाभाई के कृतित्व में मिलता है वह उनकी मौलिकता और अप्रतिमता को उद्घाटित करता है ।

भाषा

गोविन्द गिल्लाभाई के सम्पादन की अनेक विशिष्टताएं हैं, इनमें भाषिक वैशिष्ट्य विशेष उल्लेखनीय है, उन्होंने प्राप्त कृतियों को सम्पादित करते हुए उनकी भाषा वृद्धि की है तथा अपूर्ण कृतियों को पूर्ण भी किया जैसा कि हम अन्यत्र स्पष्ट करेंगे । इनमें कहीं-कहीं उन्होंने टिप्पणी के रूप में अपना तटस्थ मंतव्य भी ज्ञापित किया है । वैसे भी गोविन्द गिल्लाभाई एक स्थापित आचार्य कवि थे । भाषा के वह पंडित थे तथा उन्होंने जहाँ भी भाषा का प्रयोग किया है वहाँ भाषा के औचित्य एवं उसकी संगत भूमिका का अवश्य ध्यान रखा है । यह तो स्पष्ट ही है कि उन्होंने कावन्य में ब्रजभाषा का तथा गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया था उसकी खड़ी बोली उर्दू की समगामिनी रही है । यह प्रभाव समग्र गुजरात में अनुभव किया जा सकता है ।

गुजरात और गुजराती भाषा हिन्दी भाषी प्रदेश और हिन्दी भाषा के साथ विशेष रूप से समान भी है, जिसके कारण गुजरात में उसी समय से हिन्दी-साहित्य-सृजन की परम्परा मिलती है जब से वह हिन्दी भाषी प्रान्तों में मिलती है । परन्तु गुजरात और गुजराती भाषा पश्चिमी हिन्दी भाषी प्रदेश और हिन्दी की पश्चिमी बोलियों के अधिक निकट होने के कारण विशेष रूप से उनके समान है । परिणामस्वरूप गुजरात में जो भी हिन्दी साहित्य लिखा गया है वह ब्रजभाषा, खड़ी बोली और डिंगल में ही प्रधानतः मिलता है, अवधी आदि पूर्वी बोलियों में नहीं । वैसे गुजरात में तुलसीकृत रामायण का प्रारम्भ से ही बड़ा प्रचार मिलता है, फलस्वरूप उसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां आज भी गुजरात में अनेक स्थानों पर मिलती हैं तथा आज भी अनेक स्थानों पर रामायण प्रचार समिति तथा रामायण पाठशाला

मिलती हैं । इतना ही नहीं, रामायण का प्रभाव गुजरात के अनेक हिन्दी कवियों पर भी देखा जा सकता है । उदाहरणार्थ मूलदास नामक कवि ने रामायण की चाल पर और उसीके प्रभाव के कारण 'वीरायण' नामक एक जैन प्रबन्ध काव्य लिखा है । परन्तु उसकी भाषा भी प्रधानतः ब्रजभाषा ही है । कुछ पंक्तियां वहाँ वीरायम से उद्धृत की जा रही है :

वर्धमान सुने बात हमारी । तब मुख दिख पितु मात सुखारी ।
राज लक्ष्मि भंडार भरे हैं । स्वजन सबहि अनुकूल विचरे हैं ।
यह संसार सकल सुखदाता । तव मुख निरखत लागत शाता ।
सब सुकृत फल सुत सुख प्यारा । बिनु सुत भवन सदा अंधियारा ।

आशय यह है कि गुजरात में तुलसी-कृत रामायण का कुछ प्रभाव ही मिलता है वैसे पूर्वी हिन्दी की बोलियों में वहाँ साहित्य नहीं लिखा गया । केवल ब्रजभाषा, खड़ी बोली और डिंगल में हिन्दी साहित्य मिलता है ।

13वीं 14वीं शताब्दी में तो कु गुजरात में हिन्दी साहित्य लिखा गया है, वह प्रधानतः मुसलमान सूफी संतों द्वारा लिखित होने के कारण मुख्यतः खड़ी बोली में ही मिलता है, जिसे परवर्ती मुसलमान कवियों ने भी अपनी भाषा को हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी के साथ-साथ गूजरी भी कहा है ।

गुजरात के प्रसिद्ध मुसलमान हिन्दी कवि वली फैयाज ने अपने ग्रन्थ 'सहादत नामा' या 'महफिले गम' में अपनी भाषा को 'रेक्ता' या 'रख्ता' कहा है । उनकी कुछ पंक्तियां भी यहाँ देखी जा सकती हैं:

कि कई कई साहबां यूँ कह गये हैं ।
न इसकी गर्द को हम पहुँचते हैं ।
खसुसन जो वली फैयाज नाजिम ।
कहा इस तरह से हंसामाए मम ।

हिन्दी भाषी प्रदेशों के समान ही गुजरात के सन्त-कवियों में भी एक प्रकार की मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है जिसे कुछ विद्वानों ने सधुक्कड़ी भाषा का नाम दिया है, और जिसके मूल में खड़ी बोली ही प्रतीत होती है । गुजरात के अनेक सन्त-कवियों ने ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है परन्तु प्रधान रूप से इन कवियों की भाषा को मिश्रित भाषा-जिसके

मूल में खड़ी बोली है - कहा जा सकता है । सन्त कवि अखा की कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं:

क्या जाने लोका काला रे ।
घेनमयी सो लाल गुलाला रे ।
क्या जाने लोका काला रे ।
मोहे पियुं सेजूँ पर मिलिया रे ।
तबकी बहोत मैं रलिया रे ।
उमगी सो रस उजलिया रे ।

इस समय अनेक जैन कवियों ने भी अनेक काव्य-ग्रंथ लिखे हैं, परन्तु उनकी भाषा पर अपभ्रंश के अधिक प्रभाव के कारण गुजरात के विद्वानों द्वारा जूनी, गुजराती और हिन्दी के विद्वानों के द्वारा प्रचीन हिन्दी कही गयी है । जब तक विशुद्ध भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उन रचनाओं का अध्ययन न किया जाय तब तक उनकी भाषा के विषय में किसी प्रकार का निर्णय नहीं लिया जा सकता है । परन्तु इतना निश्चित है कि जैन कवियों ने प्राचीनता के आग्रह के कारण अपनी रचनाओं में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जिस पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट है । परवर्तीकाल में हिन्दी में केवल डिंगल काव्य परम्परा ही ऐसी है जिसमें प्राचीनता का वही आग्रह और वही अपभ्रंश की छाया दृष्टिगोचर होती है, जो गुजरात के प्राचीन जैन कवियों तथा हिन्दी के चारण कवियों में समान रूप से मिलती है । गुजरात में राजस्थान से अनेक चारण-कुल बहुत पहले ही आ गये थे और गुजरात में डिंगल-काव्य-परम्परा की न केवल नींव डाली, परन्तु उसे आधुनिक काल तक अक्षुण्ण बनाये रखा । गुजरात के प्रसिद्ध चारण कवि ईसर बारोट की हरिरस नामक रचना में से कुछ पंक्तियां यहाँ उद्धृत की जा रही हैं -

पाले पखवार केला प्रहलाद ।
सुण्यो तेंय सेवक तारण साद ।
बाँधे तेंय वार केता बलराव ।
वगोइय दाणव कीध कवाय ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात के हिन्दी कवियों ने पश्चिमी हिन्दी की प्रधान बोलियों का ही विशेष प्रयोग किया है । परन्तु यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कि जिस प्रकार मध्यकाल में हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली, डिंगल, अवधी, मैथिली आदि

कई बोलियों का प्रयोग मिलता है, परन्तु जो स्थान ब्रजभाषा का था वह अन्य किसी बोली का नहीं था । उसी प्रकार गुजरात में भी यद्यपि खड़ी बोली और डिंगल में हिन्दी-साहित्य मिलता है, परन्तु जो स्थान यहाँ ब्रजभाषा का था वह अन्य किसी का नहीं । भक्तिकाल के प्रारम्भ से ही ब्रजभाषा ने जो साहित्य के क्षेत्र में प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था तथा उसका जो प्रभाव हिन्दी भाषी क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है वही प्रभाव एवं प्रभुत्व गुजरात में भी उसी समय से मिलने लगता है । आशय यह कि जिस प्रकार हिन्दी भाषी प्रदेश में ब्रजभाषा की प्रधान परम्परा के प्रारम्भ होने से पूर्व अर्थात ब्रजभाषा के प्रकर्ष काल, भक्ति एवं रीतिकाल से पूर्व, खड़ी बोली, डिंगल आदि की छुटपुट परम्परा मिलती है, उसी प्रकार गुजरात में भी भक्ति-काल से पूर्व खड़ी बोली आदि की परम्परा मिलती है, उसी प्रकार गुजरात में भी भक्ति-काल से पूर्व खड़ी बोली आदि की परम्परा मलती है । परन्तु ब्रजभाषा के प्रकर्ष काल में हिन्दी -भाषी प्रदेश के समान ही गुजरात में भी खड़ी बोली और डिंगल की परम्पराएं समाप्त तो नहीं होती परन्तु क्षीण अवश्य हो जाती हैं । भक्ति-रीतिकाल में गुजरात में, हिन्दी भाषी प्रदेश के समान, ब्रजभाषा का प्रयोग केवल सगुणोपासक भक्ति कवियों एवं रीति कवियों द्वारा ही नहीं हुआ है, परन्तु निरगुणियाँ संत कवियों, सूफियों और भाट चारणों द्वारा भी हुआ है । आधुनिक काल में क्रमशः खड़ी बोली हिन्दी की सभी बोलियों का स्थान लेती जा रही है, जो हिन्दी-भाषी प्रदेश के समान ही है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि गुजरात की हिन्दी-काव्य-परम्परा की भाषायी स्थिति प्रारम्भ से ही हिन्दी भाषी प्रदेश के समान और समानान्तर मिलती है ।

पहले विचार किया जा चुका है कि ऐतिहासिक दृष्टि से गोविन्द गिल्लाभाई हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की परिसीमा में ही आते हैं । भारतेन्दु और द्विवेदी-युग को आधुनिक काल का प्रथम और द्वितीय उत्थान कहने का तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि ये आधुनिक काल न होकर रीतिकालीन अनेक प्रवृत्तियाँ जहाँ अनेक नवीन प्रवृत्तियों को स्थान दे रहीं थीं, वहीं अनेक प्राचीन प्रवृत्तियाँ पूर्ववत् साहित्य में वर्तमान थीं । इस युग में हिन्दी साहित्य ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली को साहित्य के एकमात्र माध्यम के रूप में स्वीकृत करने जा रहा था । परिणामस्वरूप ब्रजभाषा का प्रचलन धीरे-धीरे सीमित होने लगा था और खड़ी बोली का प्रयोग गद्य के साथ-साथ पद्य में भी होने लगा था । परन्तु इस युग में काव्य की भाषा प्रधान रूप से ब्रजभाषा ही थी तथा गद्य की भाषा खड़ी बोली थी । गोविन्दगिल्ला भाई उन्हीं कवियों की पंक्ति में आते हैं जिन्होंने ब्रजभाषा का ही प्रयोग अपनी काव्य-कृतियों

में किया है । आशय यह कि जिस युग में गोविन्द गिल्ला भाई आते हैं उसमें ब्रजभाषा का प्रयोग पद्य और खड़ी बोली का प्रयोग गद्य साहित्य के लिए होता था ।

गोविन्द गिल्लाभाई के साहित्य में उनके युग की उक्त विशेषता न केवल प्रतिबिम्बित होती है, वरन् वे इसके विषय में पूर्णतः जागरुक भी थे । उन्होंने एक स्थान पर लिखा भी है कि :

खडी बोली के वचन को हिन्दी कोऊ कहाय ।
गद्य ग्रंथ तामें लिखत सकल सुबुद्धि सदाय ।
पद्य रचत पंडित सबै ब्रजभाषा के मांहि ।
ब्रजभाषा बिन काव्य की शोभा शोहत नांहि ।

गोविन्द गिल्लाभाई के भाषा प्रयोगों के अध्ययन से पूर्व यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि आधुनिक काल में अपने देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यों में जिस भाषादर्श का विर्वाह साहित्यकार कर रहे हैं, वह प्राचीनकाल के साहित्यों में नहीं दिखायी देता । आशय यह कि आजकल जिस प्रकार साहित्यकार अपनी भाषा की व्याकरणिक परिशुद्धता के विषय में ही नहीं, वरन् उसके निजी शब्दकोश के विषय में जागरुक हैं, उस प्रकार मध्यकालीन साहित्यकार नहीं था । आधुनिक हिन्दी में संस्कृत का शब्दकोश ही सामान्यतः स्वीकृत किया जाता है जबकि मध्यकालीन हिन्दी में संस्कृत के साथ-साथ प्रकृत, अपभ्रंश, अरबी-फारसी आदि के शब्द तो सामान्यतः स्वीकृत किये ही जाते थे, स्थानीय बोलियों और प्रन्तीय भाषाओं के शब्द भी आवश्यकतानुसार ग्रहण किए जाते थे । इतना ही नहीं, वरन् एक ही छंद के विभिन्न पादों में विभिन्न भाषाओं के वाक्य या वाक्यांश प्रयोग किये जाने की एक विशेष शैली भी मिलती है, जिसे भोजराज ने भाषा चित्रकाव्य की संज्ञा दी है हिन्दी में भी इस शैली का प्रयोग अनेक कवियों ने किया है ।

आशय यह कि मध्यकालीन हिन्दी कवि का भाषादर्श आज के कवि के भाषादर्श से अनेक दृष्टियों से भिन्न था । इसीलिए चंदबरदाई जहाँ, 'षडभाषा पुरानं च कुरानंकथितंमया' के कथन में अपनी मिश्रित भाषा के स्वरूप का सगर्व परिचय देते हैं, वही भिखारीदास मिश्रित भाषा के प्रयोग के कारण तुलसी और गंग को कवियों का सरदार कहते हैं ।

तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार ।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार ।

साथ ही ब्रजभाषा के ज्ञान के लिए उन्होंने ब्रजवास की आवश्यकता न बता, उसकी मिश्रित प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया है :

ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाषानि ।
सहज पारसी हूँ मिलै षट् विधि कहत बखानि ॥

रीतिकालीन कवियों की भाषा के अध्ययन से भी यही सिद्ध होता है कि उन्हें मिश्रित भाषा ही काव्य भाषा के रूप में स्वीकृत थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भिखारीदास की उक्त उक्ति को दो सौ वर्षों की काव्य-परम्परा के पर्यालोचन के उपरान्त, काव्य भाषा के स्वरूप का यथार्थ निर्णय माना है। रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में न केवल हिन्दी की विभिन्न बोलियों के शब्दों का बेरोकटोक प्रयोग किया था, भक्ति काल से ही मिश्रित रूप में प्रयुक्त किये थे। आशय यह कि ब्रजभाषा जो भक्ति काल से आधुनिक काल तक काव्य की सामान्य भाषा रही है, भक्ति काल से ही मिश्रित रूप में प्रयुक्त होती आ रही है। हिन्दी में आदि काल से लेकर द्विवेदी युग तक काव्य-भाषा में मिश्रित काव्य-भाषा के प्रयोग की परम्परा ही मिलती है। द्विवेदी युग में प्रथम बार शुद्ध भाषा प्रयोग का आग्रह मिलता है।

भारतेन्दु युग में उत्पन्न होकर और द्विवेदी युग में प्रौढ़ता प्राप्त करने वाले गोविन्द गिल्ला भाई अपने युग के अनेक कवियों के समान, रीतिकालीन काव्य परम्परा से अधिक प्रभावित होने के कारण, अपनी काव्य कृतियों में मिश्रित ब्रजभाषा का ही प्रयोग करते हैं। सम्भवतः केवल ब्रजभाषा में ही काव्य-रचना करने के कारण तथा द्विवेदी जी के प्रभाव क्षेत्र हिन्दी भाषी प्रदेश से दूर होने के कारण गोविन्द गिल्लाभाई आचार्य द्विवेदी के शुद्ध भाषादर्श को स्वीकृत नहीं कर सके। परन्तु इतना निश्चित है कि वे अपने युग की भाषा विषयक जागरुकता से परिचित अवश्य थे। इसीलिए उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र कुछ भाषा विज्ञान सम्मत उल्लेख मिलते हैं तथा हिन्दी व्याकरण और हिन्दी गुजराती व्याकरण की तुलना का अपूर्व प्रयास मिलता है। संस्कृत और ब्रजभाषा के सम्बन्ध के विषय में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि :

भाषा शाखा कहत है देख संस्कृत मूल ।
मूल रहत है कूच में शाखा तो फलफूल ॥

अन्यत्र उन्होंने देश भेद के अनुसार भाषा भेद का उल्लेख किया है परन्तु हिन्दी को उन्होंने अखिल भारतीय भाषा माना है :

देश परतवे मनुष्य की भाषा होत अनेक ।
तामें हिन्दुस्तान की हिन्दी भाषा एक ॥

हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों के विषय में उन्हें कोई विशेष जानकारी नहीं थी इसलिए उन्होंने हिन्दी भाषा के भेद वर्णन में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का वर्णन किया है। उर्दू के विषय में उन्होंने जो लिखा है उससे यही सिद्ध होता है कि वे उसे हिन्दी की एक विशेष शैली मानते थे, जिसमें अरबी फारसी के शब्दों का विशेष प्रयोग होता है जो उर्दू विषयक सभी सामान्य धारणाओं की तुलना में विशेष रूप से भाषा विज्ञान सम्मत है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई अपने युग के अनुरूप अनेक भाषा वैज्ञानिक तत्वों से परिचित थे, परन्तु अपने काव्यादर्श के समान ही उन्होंने अपनी काव्य-भाषा के प्रयोग में अपने आदर्श कवि रीति कवियों के भाषा-प्रयोगों का ही अनुसरण किया है, जिनकी मिश्रित ब्रजभाषा सर्वविदित हैं । रीतिकालीन कवियों की ब्रजभाषा में हिन्दी की कई बोलियों के अनेक व्याकरणिक तत्व तथा शब्द आदि मिलते हैं, जो रीतिमुक्त कवियों की भाषा में संभव नहीं हैं, परन्तु गोविन्द गिल्लाभाई का भाषा-ज्ञान बहुत कुछ रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं के अध्ययन पर आधारित था, अतः उनकी ब्रजभाषा में हिन्दी की उन बोलियों का मिश्रण मिल जाता है, जो रीतिबद्ध कवियों की ब्रजभाषा में मिलता है । इसके अतिरिक्त गुजराती का प्रभाव भी इनकी ब्रजभाषा में मिलता है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई की ब्रजभाषा रीतिबद्ध कवियों की मिश्रित ब्रजभाषा के आदर्श का ही अनुगमन करती है, परन्तु उसमें गुजराती का अतिरिक्त प्रभाव या मिश्रण भी विशेष रूप से मिलता है । अपने युग के अनुरूप वे भाषा, और उसके व्याकरण के विषय में जागरुक भी थे । साथ ही गद्य के लिए खड़ी बोली और पद्य के लिए ब्रजभाषा के प्रयोग की परम्परा से परिचित ही नहीं थे, वरन् उसका उन्होंने स्वयं पालन भी किया है । आशय यह कि जितना भी उन्होंने हिन्दी गद्य लिखा है, प्रधानतः वह खड़ी बोली में ही है, तथा समूचा पद्य ब्रजभाषा में ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्लाभाई हिन्दी की बोलियों में से केवल ब्रजभाषा और खड़ी बोली ही से विशेष रूप से परिचित थे और उन्हीं का प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है । परन्तु इन दोनों बोलियों की सभी विभेदक विशेषताओं से वे पूर्णतः परिचित नहीं लगते, इसीलिए उनकी ब्रजभाषा में खड़ी बोली का तथा खड़ी बोली में ब्रजभाषा का प्रभाव मिलता है । रीतिकालीन अनेक कवियों ने अपनी ब्रजभाषा में कहीं-

कहींअलंकार विशेष के आग्रह आदि के कारण खडी बोली का मिश्रण किया है, जैसे ग्वाल की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :

आवै परवाना तब चलै ना बहाना, ताते
नेकी कर जाना फेर आना है न जाना है ।

परन्तु ऐसे प्रयोग संज्ञा के आकारान्त प्रयोग या क्रियापद के आकारान्त प्रयोग तक ही सीमित है, खड़ी बोली के परसर्ग आदि का प्रयोग रीतिकालीन कवियों की ब्रजभाषा में नहीं मिलता । गोविन्द गिल्ला भाई की ब्रजभाषा में अलंकार आदि के आग्रह के कारण संज्ञापदों और क्रियापदों का आकारान्त प्रयोग तो मिलता ही है, वैसे भी खडी बोली के अनेक तत्वों का सहज सम्मिश्रण भी दृष्टिगोचर होता है । कुछ उदाहरण यहां देखे जा सकते हैं :

1) • चावल का परसाद
   • भरोसा एक सिद्धि का सुहात सदा ।
   • ममता से ज्ञान बिखरात है ।
   • मुझ पै अनुकूल है ।
2) • बुद्धि कों बढ़ाता और विघ्न कों विलाता है ।
   • एक ..... छूट गया है ।
   • छैलन कों हेरना, तोद कों टेरना, चंद सामे हेरना ।
3) • बाँह धरी गल एक दूजा पर ।

उक्त उदाहरणों में क्रमशः परसर्ग, क्रियापद और संज्ञा पद में खड़ी बोली का प्रभाव देखा जा सकता है ।

जिस प्रकार गोविन्द गिल्लाभाई की कविता की ब्रजभाषा पर खडी बोली परिलक्षित होती है, उसी प्रकार गद्य की खडी बोली पर ब्रजभाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । खडी बोली गद्य पर ब्रजभाषा का प्रभाव कहीं-कहीं, विशेष रूप से अपने हिन्दी काव्य ग्रंथों की हिन्दी टीकाओं में, इतना अधिक है कि वह रीतिकालीन कवियों की गद्य टीकाओं की ब्रजभाषा जैसा प्रतीत होता है । कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं :

- **सूर्य जैसे किरण तें जल कों ऐंची लेत है .....**
- **मृगनयनी स्त्री संग सदाय क्रीड़ा करत है ..... मकरंद ले कें भ्रमर राजी**

होत है ।

- और साधु पुरुषों कों जैसे शंख निर्मल लागत है, तथा भोगी पुरुषों कों पारिजात पुष्प जैसे सुखदायक लागत है, ऐसें चौदहों रत्न नायका नेत्र में दिखात है ।

परन्तु टीकाओं के अतिरिक्त अपने ग्रंथों में जहाँ उन्होंने गद्य का प्रयोग किया है वहाँ वह ब्रजभाषा से इताना अधिक प्रभावित नहीं है । लेकिन कुछ प्रभाव अवश्य है, निम्नलिखित उद्धरण से इस प्रभाव का अनुपात अनुमानित किया जा सकता है :

'हिन्दी भाषा में हमने आज तक में छोटे बड़े सब मिल कें 24 चौबीस ग्रंथ बनाय कें तैयार किये हैं, उनमें से चौदह ग्रन्थ प्रथम यह भाग में छप गये हैं, और शेष रहे बाके नाम नीचे लिखते हैं यह सिवाय कितनेक अपूर्ण हैं उनका नाम नहि लिखा है । वह जो पूर्ण हो जायेगा तो उनका नाम दूसरे भाग में प्रगट किया जायेगा।

प्रस्तुत उद्धरण में ब्रजभाषा का जो भी प्रभाव है स्पष्ट हो जाता है । गुजराती का प्रभाव भी जो इनके गद्य में दृष्टिगोचर होता है वह इससे स्पष्ट नहीं होता, केवल छोटे बड़े मुहावरे के प्रयोग में ही कुछ गुजराती का प्रभाव माना जा सकता है । क्योंकि हिन्दी का मुहावरा 'बड़े छोटे' हैं । प्रस्तुत प्रयोग गुजराती के नानां मोटा का सीदा अनुवाद ही है । इस प्रकार का गुजराती प्रभाव उनकी खड़ी बोली में अन्यत्र भी मिलता है । उदाहरणार्थ गुजराती व्याकरण के अनुसार पास, दूर, नींचे, ऊपर आदि शब्द स्त्रीलिंग हैं । अतः इनसे पूर्व आने वाले सम्बन्ध वाचक सर्वनाम या संज्ञाओं के साथ संबंध वाचक परसर्ग स्त्रीलिंग में ही आते हैं, जबकि हिन्दी में ये पुलिंग में आते हैं । गोविन्द गिल्लाभाई ने इनके प्रयोग में गुजराती व्याकरण के अनुसार हमारी पास, उसकी नींचे, आदि का ही प्रयोग किया है । इतना ही नहीं 'ज्ञ' के गुजराती उच्चारण 'ग्न' का प्रभाव भी आज्ञा आदि शब्दों के सरलीकृत रूप 'आगना' आदि में देखा जा सकता है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई की खडी बोली पर ब्रजभाषा के प्रभाव के साथ-साथ गुजराती का भी प्रभाव है ।

अपने सम्पादन कार्य में गोविन्दगिल्लाभाई ने अनेक स्थानों पर गुजराती में विवरण तथा टिप्पणियाँ की हैं । कहीं-कहीं तो बहुत महत्वपूर्ण जानकारियाँ उन्होंने गुजराती में ही संलग्न की हैं, जिनकी चर्चा हम अन्यत्र कर रहे हैं ।

सम्पादित काव्य की श्रेष्ठता एवं अश्रेष्ठता के लिए उन्होंने परम्परा पर निर्भर रहना स्वीकार न करके स्वयं द्वारा स्थापित मानदण्डों को ही आधार बनाया था, काव्य के श्रेष्ठत्व

के लिए उन्होंने वक्रोक्ति विनोद में एक स्थान पर कहा है -

कोउ कहे कविन की पिंगल मतानुसार रचना लखाय सोइ कविता प्रमानिये ।
काऊ कहे रसमय रचना लखाय वाकों काव्य कमनीय कहि वानि ते बखानिये ।
कोऊ कहे लोकोत्तर रचना लखाय जहाँ कविता मकन सोइ उन माँहि आनिये ।
गोविंद मेरे जान जामे यह तीनों होय सोइ सुखदाय काव्य मन माँहि मानिये ।[48]

इसी प्रकार उन्होंने काव्य लक्षण की अपेक्षा काव्य शरीर एवं उसके दशांशों को अधिक महत्व दिया है । एक सांगरूपक के द्वारा वह अपनी बात कहते हैं -

शब्द अर्थ देह तामें शब्द अग्र भाग पुनि,
पुष्टि भाग अर्त और जीव रस राजे है ।
सुन्दरता व्यंग्य पुनि भास ध्वनि भाखियतु,
उकति अपूर्व सोइ वसन विराजे है ।
गुन वृत्ति रीति गुन दोष सबे दूषण है,
उपमादि अलंकार भूषण सो भाजे है ।
गोविन्द कहत ऐसी काव्य कामिनी की काय,
विमल विशाल वर सुन्दर सो छाजे है ।[49]

सम्पादन कार्य के अन्तर्गत ही उन्होंने विवेचना, आलोचना तथा टीका टिप्पणियों को भी सम्मिलित कर लिया था । कुछ संस्कृत के ग्रंथों की उन्होंने सटीक भाषा लिखकर अपने अनुवाद कौशल को भी व्यक्त किया है यथा -

अन्यमते काव्य के दशांग कथन
पादाकुलक छंद
शब्द अर्थ छंद प्रस्तावहि । नायकादि गुन रीति गिनावहि ।
अलंकार रस व्यंग्य प्रमानो । सो दश काव्य के अंग बखानो ।

इस प्रकार गोविन्द गिल्लाभाई द्वारा सम्पादित कृतियों के अनुशीलन से उनकी सम्पादन कला, वैज्ञानिक दृष्टि से संकलन की प्रवृत्ति तथा संग्रहीत काव्य के प्रति उनका अपना दृष्टिकोण भी स्पष्ट हो जाता है ।

अन्त में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी खड़ी बोली ने अपना दर्प स्थापित करते हुए साहित्य में एक नया मोड़ उपस्थित किया था, उसी तरह गुजरात के महाकवि गोविंद गिल्लाभाई ने भी सम्पादन कला के संदर्भ में अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करते हुए बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य प्रारंभ किया जो इनके परवर्ती युग में भी सतत् अग्रसर होता रहा ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुजरात साहित्य नुं रेखादर्शन
2. मध्यकालीन हिन्दी और गुजराती निर्गुण काव्य; तुलनात्मक अध्ययन
3. गुजरात के कृष्णभक्त कवि और उनका ब्रजभाषा काव्य
4. हिन्दी साहित्य को कच्छ प्रदेश की देन
5. गुजरात का चारणी साहित्य
6. गुजरात में रामानन्द सम्प्रदाय के कवि और उनका काव्य
7. कच्छी संतों की हिन्दी वाणी
8. गुजरात की हिन्दी सेवा
9. हिन्दी और गुजराती कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
10. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन
11. सूरदास और नरसी मेहता
12. कच्छ की ब्रजाभाषा पाठशाला
13. स्वामीनारायण सम्प्रदाय का हिन्दी साहित्य
14. मुक्तानन्द स्वामी का हिन्दी साहित्य
15. गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास
16. मेहरावण सिंह कृत प्रवीणसागर
17. महाराज लखपति सिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
18. कुंवर कुशल कृत लखपति जससिंधु
19. गुजरात की संत काव्य परम्परा में करुणा सागर
20. प्राणनाथ सम्प्रदाय एवं साहित्य
21. मीर काव्य परम्परा एवं कवि मीरमुराद
22. गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
23. गुजरात के संत कवियों में सामाजिक संवादिता
24. प्रेमानंद प्रेमसारी का काव्य
25. गुजरात के कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
26. गुजरात में कबीर परम्परा

27. ब्रह्मानन्द एक अध्ययन
28. हिन्दी गुजराती के ज्ञानाश्रयी धारा के संतों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
29. गुजरात का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पृ. - 12
30. गुजरात के संतों को हिन्दी वाणी पृ. - 112
31. रास और रासान्वयी काव्य
32. संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी कविता - सम्पादक नर्मदेश्वर चतुर्वेदी पृ. - 171
33. जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन
34. डॉ. हरीश शुक्ल - जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य की देन, पृ. - 55
35. डॉ. अम्बाशंकर नागर एवं डॉ. रमणलाल पाठक-गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, पृ. 369
36. डॉ. नागर एवं डॉ. पाठक - गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, पृ. - 144
37. डॉ. नागर एवं डॉ. पाठक - गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, पृ. - 365-368
38. डॉ. अम्बाशंकर नागर एवं प्रो. अल्लाबख्श शेख - गुजरात की हिन्दी काव्यधारा, पृ. 21
39. डॉ. अम्बाशंकर नागर एवं प्रो. अल्लाबख्श शेख - गुजरात की हिन्दी काव्यधारा, पृ. 20
40. गुजरात का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : संक्षिप्त परिचय पृ. 38
41. गो. हरिराय जी का ब्रजभाषा साहित्य - डॉ. विष्णु चतुर्वेदी पृ. 129
42. अष्टछापेतर पुष्टिमार्गीय कवि - डॉ. अक्षय कुमार गोस्वामी पृ. 116
43. कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला - डॉ. निर्मला असनानी - पृ. 124
44. अष्टछाप कवि
45. गो. हरिराय जी और उनका ब्रजभाषा साहित्य
46. मिश्रबन्धु विनोद
47. निजी डायरी-गोविन्द गिल्लाभाई
48. तुलनीय है : वक्रोति, विनोद, ह. प्र. सं. ग्रंथ 155/पृ. 4 छं. 10
49. वक्रोक्ति, विनोद - वही पृ. 4,5 छं. 11